शोधामृत
(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-4.0
Vol.-3; issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No- 235-237
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :
डॉ. प्रशांत कुमार चौरे
खैरागढ़, (छ.ग.).

Corresponding Author :
डॉ. प्रशांत कुमार चौरे
खैरागढ़, (छ.ग.).

दक्षिण कोसल के कलचूरि वंश (संदर्भ-दुर्ग संभाग)

प्रस्तावना : प्राचीन भारतीय इतिहास में कलचुरि राजवंश की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। इस वंश के विभिन्न शासकों के द्वारा साम्राज्य विस्तार को अग्रणी स्थान तो मिला ही किन्तु साथ ही धर्म, विद्या, संस्कृति तथा कला को भी उच्चतम् स्थान प्रदान करते हुए प्रश्रय दिया। भारतीय इतिहास में यह वंश लगभग 1200 सौ वर्ष तक शासन करने वाला देदीप्यमान वंश के रूप में विख्यात है। श्री नेत्र पाण्डेय के अनुसार प्रारंभ में यह वंश प्रतिहारों के सामंत के रूप में कार्यरत् थे, किन्तु जब प्रतिहार निर्वल तथा विश्रृंखलित हो गये तब कलचूरि वंश ने अपनी स्वंतत्रता का शखनांद कर दिया।[1]

आठवीं शताब्दी ई. में चेदि प्रखण्ड पर कलचूरि राजवंश का अधिपत्य स्थापित हुआ। वस्तुतः इनकी प्रारंभिक राजधानी के संबंध में सुस्पष्ट विवरण अप्राप्त है। चेदि नामक क्षेत्र विशेष में राज्य करने के कारण ये चैद्य या चेदि कुल कहलाने लगें तथा इनकी राजधानी (त्रिपुरी) चेदि नगरी[2] कही गयी।

कलचूरि वंश के युवराज देव (द्वितीय) से संबंधित ताम्रलेखों में त्रिपुरी नामक स्थान को राजधानी के रूप में उल्लेख किया गया है। अनुमान है कि त्रिपुरी जबलपुर के आस पास ही रहा होगा। यह राज वंश इतिहास में विविध नामो से अभिज्ञात है। कलचुरी, कलचूरि, कालच्छुरि, कलत्सूरि, कटच्छरि आदि, जिनमें सबसे प्रसिध्द और स्वीकार्य नाम कलचूरि को माना जाता है।[3] बिल्हारी अभिलेख इन्हें अर्जुन की संतान मानता है। चूँकि वे हैहय वंशीय थे। अतः यह वंश भी स्वयं को हैहय क्षत्रिय की संतान मानता है।

दानपत्रों में भी सोम या चन्द्र, भरत, हैहय इत्यादि उत्कीर्ण मिलते हैं।[4] विविध तामलेखों तथा अन्य शासकों के अभिलेखों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि, कलचूरि हैहय वंशज है। किन्तु ठीक इसके विपरित रतनपुर के कलचूरियों के ताम लेखों में सौर परिवार का अंकन मिलता है। जनमे सूर्य, मनु तथा कृतवीर्य को अपने वंश के आदि पुरुष के रूप में निरुपित किया गया है।[5] अतः यह स्वयं को सोमवंशी मानते हैं। कलचुरि शासकों के द्वारा अपने अभिलेखों में काल गणना हेतु

प्रायः चेदि सम्वत् अथवा कलचूरि सम्वत् का उपयोग दृष्टि गोचर होता है। इस संवत्सर का प्रादुर्भाव लगभग 249-50 ई. में हुआ माना जाता है। संभवतः 'ईश्वर सेन' नामक किसी आभीर राजा के सिंहासनारोहण के समय इस संवत् का उपयोग किया गया था।[6]

कलचूरि शासकों ने अपने राज्य शासन के महत्वपूर्ण दिशा निर्देशों तथा राजाज्ञा का अभिलेखियकरण किया, जिसमें मुख्य रूप से इसी कलचूरि या चेदि संवत्सर का प्रयोग एक लम्बी अवधि तक करते रहें फलतः यह सम्वत् कलचूरि सम्वत् के नाम से विख्यात हो गई।[7]

कलिंग राज : जबलपुर (त्रिपुरी) के कलचूरियों की एक शाखा जिसे कालांतर में लहुरी शाखा कहा गया है, के उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट होता है कि, त्रिपुरी शाखा के कोक्कल नामक शासक के अट्ठारह पुत्र थे। जिनमें से बड़ा पुत्र त्रिपुरी की गद्दी पर बैठा तथा अपने अन्य भाईयों को माण्डलिक अभिषिक्त किया। इन्हीं भाईयों में से किसी एक के घर कलिंग राज हुआ जिसने दक्षिण कोसल की भूमि को अपने शौर्य बल से जीता तथा राजधानी तुम्माण को बनाकर परम ऐश्वर्य को प्राप्त किया।

जाजल्लदेव (प्रथम) रतनपुर शिलालेख क्र. सं. 866 से ज्ञात होता है कि, कलिंग राज के तुम्माण को राजधानी चुनने के पूर्व ही ई. सन् 900 में इनके पूर्वजों द्वारा तुम्माण को राजधानी बनाई जा चुकी थी, जिसे सोमवशियों के द्वारा 950 ई में अवरोध उत्पन्न कर दिया गया था। अतः पुनः कलिंग राज ने लगभग ई. 1000 में तुम्माण में राजमुख भोगते हुए अपने शत्रुओं का त्राण किया। कलिंग राज का शासन काल लगभग 1000 ई. से 1020 तक माना जाता है। नवसहसांक चरित् ज्ञात कराता है कि, परमार वंशीय राजा श्सिंधुराजश् ने कोसल जनपद पर आक्रमण करके कोसल नरेश को पराजित किया था।[8]

कमल राज : लगभग 20 वर्ष तक कलिंगराज राजा बना रहा। तत्पश्चात् उसका पुत्र कमलराज ई सन् लगभग 1020 में गद्दी नशीन हुआ। कमल राज के ही समकालीन गांगेय देव ने कोक्कल द्वितीय का पुत्र उत्कल पर आक्रमण किया जिसमें कमल राज ने उसकी भली प्रकार सहायता पहुँचाई जिसमें कमल राज को एक वीर और शौर्यवान योद्धा की प्राप्ति हुई। इस साहिल्ल नामक योद्धा और उसके वंशजों के द्वारा बाद के समय में अनेकों युद्ध लड़े गये। तथा कलचुरियों द्वारा अनेकों प्रदेशों में अधिपत्य हो गया। प्रथम पृथ्वी देव का आमोदा ताम्रपत्र लेख क. सं. 831 के अनुशीलन से, कमल राज का शासन काल लगभग 1020 ई. से 1045 तक मानते है।

रत्नराज : ई. सन् 1045 से 1065 का काल रत्नराज का आता है। यह कमल राज का पुत्र था। जो उसका योग्य उत्तराधिकारी बना। इसके द्वारा स्वयं के नाम पर रत्नपुर नामक नगर भी बसाया गया। रत्नराज का विवाह कोरो मंडल के अधिनायक राजा वज्जूक की पुत्री नोनल्ला देवी से हुआ था। इनके द्वारा राजधानी कम्माण में बंकेश्वर, रत्नेश्वर आदि मंदिर स्थापत्य कार्यों का शिलान्यास किया गया, तथा राजधानी की सुंदरता बढ़ाने हेतू अनेकों उद्यानों का निर्माण किया गया।[9]

पृथ्वीदेव (प्रथम) : पृथ्वीदेव प्रथम से संबंधित जानकारियों हमें अमोदा, लाफा तथा रायपुर अभिलेख से मिलती है। यह रत्नराज का पुत्र था, जो लगभग 1065 में राजा बना। इसके राज्यकाल के अब तक तीन अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं जिसमें पृथ्वीदेव को महामण्डलेश्वर तथा "समधिगताशेष" पंच महाशब्द 401 से संबोधित किया गया है।

उक्त अभिलेख के वाक्यांश 120 से स्पष्ट होता है कि..... वह त्रिपुरी शासित राजवंश के अधीन एक सामंत के रूप में राज्य संचालन करता था। उसने अपने नाम्राज्य का भली प्रकार विस्तार भी किया और सकल कोसलाधिपति का वरुद् धारण किया था। वह कोसल में स्थित 21 हजार गाँवों का स्वामी बना। पृथ्वीदेव प्रथम तथा उसके मंत्रियो द्वारा अनेकों मंदिरों और तालाबों का निर्माण गया गया। उसके मंत्री विग्रहराज सोंददेव तथा सामंत वल्लभराज, सेनापति जगपाल इत्यादि के नाम उत्कीर्ण लेखों प्राप्त होती है। जिनके विस्तारपूर्ण सहयोग से पृथ्वीदेव (प्रथम) ने वीरता और उदारता पूर्ण राजशासन चलाया।

पृथ्वीदेव (द्वितीय) : यह भी रत्नदेव का ही पुत्र माना गया है। इसका राज्यारोहण लगभग 1135 ई. में हुआ। इसके राज्य काल के कुल चैदह अभिलेख प्राप्त होते हैं। जो जात कराते हैं कि श्जगपालश् नामक व्यक्ति राज्य का

सेनापति था। वह एक कुशल योद्धा था। जिसके द्वारा आधुनिक श्सारंगगढ सिहावाश् के किले पर विजय प्राप्त किया था। बस्तर अंचल में कुसुमभोग कोड़ाडोंगर तथा कांकेर के प्रक्षेत्रों पर अपना अधिपत्य जमाया था। इस तरह से सेनापति जगपाल ने पृथ्वी देव द्वितीय के राज्य क्षेत्र का विस्तार किया ।

जाजल्लदेव (द्वितीय) : पृथ्वी देव (द्वितीय) के तदन्तर लगभग 1165 ई. में जाजल्लदेव शासक बना। इसके अभिलेख शिवरी नारायण मल्हार तथा आमोदा से प्राप्त होते हैं। इसे अपने शासन काल में विभिन्न समस्याओं तथा संकटों से जूझना पड़ा था। इसके शासन काल को अल्प कालीन माना जाता है। त्रिपुरी शाखा के शासक जय सिंह ने इस पर अपना अधिपत्य जमाने हेतु आक्रमण किया था। जिसमें रतनपुर शाखा के शासक वीर गति को प्राप्त हो जाते हैं। अभिलेखों में दान देने तथा मंदिर निर्माण का उल्लेख मिलता है।

जगदेव : जगदेव जाजल्लदेव का भाता था। पुण्ड्र देश में वास करता था। जाजल्लदेव की संकटापन्न स्थिति को देखकर वह कोसल आया तथा राज्य में पुनः सुराज्य तथा शांति बहाल करने का प्रयास किया। किन्तु जाजल्लदेव के स्वर्गारोहण पश्चात् उसे स्वयं राज्य काज अपने हस्तगत करना पड़ा। जयदेव ने लगभग ई. सन् 1168 से 1178 दस वर्षों तक शासन किया।

रत्नदेव (तृतीय) : रत्नदेव (तृतीय) रानी सोमल्ला देवी व जगदेव का पुत्र था, जो जगदेव के बाद उसका राज्य पदाधिकारी नियुक्त हुआ। इनका शासनकाल भी संकटो तथा विपत्तियों से भरा रहा। जिसका निवारण उसके विद्वान ब्राम्हण मंत्री गंगाधर ने किया। मंत्री के द्वारा शत्रु संघ को पराजित किया गया तथा राज्य सुचारू रूप से चलने लगा।

प्रतापमल्ल : प्रतापमल्ल सन् 1198 में राजा बना। यह रत्नदेव का पुत्र था। इसके कलचूरि संवत् 965 और 969 के दो तामपत्र लेख प्राप्त होते हैं। प्रतापमल्ल से संबंधित ताम्बे के सिक्के भी प्राप्त है। किन्तु इनके शासन काल से संबंधित किसी विशेष घटना का उल्लेख अप्राप्त है।[10]

वाहरेन्द्र : प्रतापमल्ल के पश्चात् कलचूरि वंशीय इतिहास लगभग 3 सौ वर्षों तक मौन प्रायः दिखाई पड़ता है। हालांकि 15वीं शताब्दी के अंतिम चरण किसी में वाहरेन्द नामक शासक का नाम जात होता है। संभव है, यह राजा प्रतापमल्ल का उत्तराधिकारी हो।[11] किंवदंतियों के अनुसार बाहरसाय अथवा वाहरेन्द्र उत्तराधिकारी थे, किन्तु उनके पश्चात् किसी भी उतराधिकारियों के संबंध में कोई भी सूचना प्राप्त नहीं होती है। नागपुर के भोसले सरदार "भास्करपंत" के द्वारा (1740 ई. में) इस भू-भाग पर अधिकार कर लिया गया और इस प्रकार रतनपुर के कलचूरि वंश समाप्त हो गया।

संदर्भ सूची :

1. पाण्डेय श्री नेत्र, प्राचीन भारत का इतिहास, भूमिका-पृ.क्रं. 548.
2. अभिधान चिंतामणी, 4.41.
3. राय एच.सी, झैस्टिक हिस्ट्री ऑफ़ मार्डर्न इंडिया खण्ड 2, पृ.क्रं. 238.
4. इ.क.चे.ए, भाग 2, पृ. 401.
5. झा.मंगलानंद, द.को.के.क.का. मंदिर-पृ. 23.
6. झा.मंगलानंद पृ.....पूर्वोक्त.
7. शास्त्री अजय मिश्र, त्रिपुरी, भेपाल 1971 पृ.37, इ.के.चे.ए.पृ. 22-26.
8. झा.एम.एन., पृ.35, का ई. भाग 4, पृ. 204.
9. झा.एम.एन., 35.
10. मिराशी का.इ.इ. भाग 4, खण्ड 2, पृ.392, हीरा लाल सूची क्रं. 200.
11. कील हार्न ए.इ., पृ. 39, का इ. भाग 4 खण्ड 2.

•